(समयसार) ५०-५५ (गाथा) है न? ग्यारह बोल चले हैं। (अब बारहवाँ बोल)

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग... प्रमाद को कषाय में डाल दिया। **जिसके लक्षण हैं ऐसे जो प्रत्यय (आस्रव), वे सर्व ही जीव के नहीं हैं,...** आहाहा! जीव ज्ञायकस्वरूप है, उसका अनुभव होने पर वे उसमें नहीं हैं। आहाहा! चैतन्यस्वरूप ज्ञायकस्वरूप है, उसका-अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होने पर वे मिथ्यात्व आदि भाव जीव में नहीं हैं। वे **अनुभूति से भिन्न हैं।** आहाहा!

यह **मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग जिसके लक्षण हैं...** जिनके अर्थात् ऐसे जो प्रत्यय / आस्रव। आहाहा! **वे सर्व ही जीव के नहीं हैं,...** भगवान आत्मा तो...

श्रोता : त्रिकाली द्रव्य में नहीं या पर्याय में नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे पर्याय में भी नहीं। अनुभूति के काल में पर्याय में भी वे नहीं।

वस्तु में तो नहीं, परन्तु वस्तु में नहीं-ऐसा कब अनुभव हो ? आहाहा ! आत्मद्रव्य में वे मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय नहीं, वह तो शुद्ध चैतन्य है, उसमें नहीं परन्तु उसमें नहीं यह कब हो ? कि उस चैतन्य ज्ञायक का अनुभव करे, तब इसे उसमें नहीं - ऐसा अनुभव होता है। ऐसी बात है भाई ! आहाहा ! ऐसा मार्ग वीतराग का।

उदास... उदास... उदास... आत्मा। मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग, ये आस्रव जीव में नहीं। **क्योंकि,** है ? वे **पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** आहाहा ! वे तो पुद्गलद्रव्य के परिणाम हैं। आहाहा ! आत्मा के नहीं... आहाहा ! जीव के परिणाम तो उसके स्वरूप का अनुभव करे, वह अनुभूति, वह जीव का परिणाम है। ऐसी बात है। दूसरे प्रकार से कहें तो यह मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग आत्मा का क्षायिक सम्यग्दर्शन होने पर, आहाहा ! क्षायिक सम्यक्त्व होने पर उसे मिथ्यात्व इसे कषाय का तो आस्रव है ही नहीं, परन्तु उतने सम्बन्धी का अविरति और योग भी इसे नहीं है। आता है ? आस्रव ? (आस्रव अधिकार, १७४ से १७६ गाथा) बालस्त्री। आत्मा आनन्दस्वरूप-ऐसा क्षायिक सम्यग्दर्शन हुआ, उपशम को भी ऐसा है उतने काल, क्षयोपशम के लिये भी उतना काल, परन्तु इस क्षायिक के लिये तो जोर है। आहाहा ! आत्मा अखण्ड आनन्दस्वरूप का पर्याय में अनुभव होने पर, उसे वे आस्रव तो नहीं, मिथ्यात्व आदि अनुभूति में (नहीं) परन्तु वास्तव में तो अनुभूति होने पर, क्षायिक समकित होने पर उसे उस सम्बन्धी अविरति और योग का भी क्षय हो जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? लिया है न ? बाल स्त्री। उसे जितना जुड़ान करे तो हो परन्तु जुड़ान नहीं करता। प्रभु चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, आहाहा ! उसका अन्तर में सम्यग्दर्शनसहित यह अनुभूति जो आचरण हुआ। आहाहा ! दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ और आचरण-अनुभूति हुई। आहाहा ! इसलिए उस अनुभूति में मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग... कषाय में प्रमाद साथ में गया, पाँच है न ? मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग, परन्तु यहाँ प्रमाद को निकालकर योग, कषाय में डाल दिया। आहाहा !

ये चार, द्रव्य में नहीं, यह तो है परन्तु कब द्रव्य में नहीं ? आहाहा ! सूक्ष्म बात है भाई ! आहाहा ! यह वस्तु जो चैतन्यद्रव्य शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु है, उसमें ये भाव नहीं

क्योंकि वह तो शुद्ध है—परन्तु कब ? शुद्ध तो त्रिकाल-शाश्वत् है और शाश्वत् उसमें तो -वस्तु में तो ये हैं नहीं परन्तु इसे नहीं - ऐसा अनुभव कब हो ? आहाहा ! जो वस्तु शुद्ध चैतन्य है, उसकी अनुभूति-उसे अनुसरण करके अनुभव होना, उसमें अनन्त गुणों का अंश व्यक्त है, उसका वेदन होना, अनन्त गुण हैं, उनका व्यक्तरूप से वेदन होना, तो इसका अर्थ यह आया कि योग नामक गुण है, चारित्र नाम का गुण है, उसका व्यक्तरूप से शुद्ध का वेदन साथ में है। आहाहा ! और इस कारण सम्यग्दृष्टि को उतने प्रकार की अविरति, उस प्रकार की अविरति और उस प्रकार का योग का भी क्षय है। आहाहा ! कब ? कि द्रव्य में तो नहीं परन्तु द्रव्य का अनुभव करे तब। ऐसी बातें हैं, ऐसा मार्ग। आहाहा !

यह भगवान आत्मा चैतन्य लोक, आहाहा ! जिसमें अनन्त... अनन्त... अनन्त... प्रकार के गुणों का एकरूप वह आत्मा; ऐसे द्रव्यस्वभाव का, सन्मुख होकर अनुभव होने पर, उस अनुभूति से वह मिथ्यात्व, अव्रत, कषायभाव का अभाव है, परन्तु अनुभूति होने पर वे पर्याय से-अनुभूति से तो भिन्न हैं। द्रव्य से तो भिन्न हैं परन्तु अनुभूति से भिन्न हैं। परन्तु अनुभूति होने पर उतने प्रकार की अविरति और योग भी क्षय हो जाते हैं। आहाहा ! ऐसा स्वरूप है। समझ में आया ? जीवद्रव्यस्वरूप भगवान आत्मा शुद्ध है परन्तु शुद्ध है, वह किसे ? वस्तु तो शुद्ध है, परन्तु किसे ? उस शुद्ध का अनुभव हुआ उसे। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बात है... और अनुभव हुआ, इसलिए वे चार आस्रव उसमें नहीं हैं, अनुभूति से भिन्न है, परन्तु अनुभूति होने पर वे उस प्रकार की अविरति और उस प्रकार का योग भी वहाँ क्षयपने को प्राप्त होता है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

यह करने जैसा यह है, बाकी सब दुनिया माने, न माने, आहाहा ! दुनिया प्रसन्न हो, प्रसन्न न हो, वह जगत् उसके कारण। वस्तु यह है। आहा ! उसे है ही नहीं, परन्तु कहते हैं अनुभूति में है नहीं, क्योंकि द्रव्यस्वभाव जो चैतन्य है, उसकी अनुभूति हुई वह तो शुद्ध हुई। त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्ध है, वह तो त्रिकाल शुद्ध है परन्तु त्रिकाल शुद्ध है - ऐसा किसे ख्याल में आता है ? जो शुद्ध के सन्मुख होकर उसका अनुभव करे, उसे यह शुद्ध है - ऐसा ख्याल में आया। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! शशीभाई ! आहाहा ! अरे ! वह लड़का कल गया वहाँ ऐसे, मैंने तो रोगी है ऐसा सुना नहीं था, उसे कोई रोग हुआ है, यह

भी नहीं सुना था। जहाँ सुना ऐसा एकदम तो कहे कि वह तो गुजर गया। आहाहा! यह नाशवान देह! देखो तो! ३५ वर्ष की उम्र, जवान। आहाहा! एक क्षण में डॉक्टर ने कहा कि ठीक है, अब ले जाओ। ये कहें हमें यहाँ रखना है, थोड़ा बहुत पपीता खिलाया, चाय और ऐसे देते हैं ऐसे वहाँ... आहाहा! ये नाशवान चीज़, बापू! महान वैराग्य का कारण है। आहाहा!

यह प्रभु आत्मा त्रिकाल पर से उदास है और मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग से प्रभु त्रिकाल उदास है। आहाहा! यह तो सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र का जहाँ अनुभव हुआ, स्वरूप-आचरण (हुआ), इससे वह चीज़ ही उसमें नहीं आती। उससे तो उदास इसका आसन पड़ा है। आहाहा! आहाहा! इस शरण बिना कहीं कोई शरण है नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा परमानन्दस्वरूप, यही एक शरण है, मांगलिक है और उत्तम है। आहाहा! यहाँ तो दो बात करनी है कि **मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग जिसके लक्षण...** अर्थात् आस्रव, प्रत्यय है न? **वे सर्व ही जीव के नहीं हैं,...** जीवद्रव्य के नहीं हैं, ऐसा समुच्चय कहा, परन्तु जीव के नहीं। **क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** आहाहा! वे पुद्गल के परिणाम होने से जीव के नहीं हैं, परन्तु जीव के नहीं... आहाहा! कब? कि **(अपनी) अनुभूति से भिन्न हैं।** जीव के नहीं। आहाहा! वे पुद्गलमय परिणाममय, इस जीव के नहीं। कब? आहाहा! कि जीव जैसा है, जितना है, जितना है, उतने का आश्रय लेकर अनुभूति करे, उससे वे भिन्न हैं। वे पहले जीव में नहीं कहा, फिर यह जीव है, ऐसी जो अनुभूति हुई, उस अनुभूति से भिन्न है। हीराभाई! ऐसी बात है, बापू! आहाहा! अरे रे!

भगवान आत्मा में अयोग नाम का गुण है, चारित्र नाम का गुण है, ज्ञानगुण है, आनन्दगुण है, चारित्र अर्थात् अकषाय - इन सब गुणों का पिण्ड प्रभु का आश्रय लेकर जब अनुभव हुआ, तब उसमें जितने गुण हैं, उनकी व्यक्तदशा, आंशिक, इस अयोग गुण का भी अंश व्यक्तदशा का वेदन आया (ऐसा कहते हैं।) आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इस भगवान आत्मा में अयोग नाम का गुण है, चारित्र-अकषायभाव नाम का गुण है, सम्यग्दर्शन / श्रद्धा नाम का गुण है। आहाहा! उन गुणों का धारक द्रव्य है, उस द्रव्य

को अवलम्बन करके जो कोई अनुभव हो, उसे वे (प्रत्यय) जीव में नहीं, उसे उसकी अनुभूति में नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं! और उसे अनुभूति होनेवाले को, सम्यग्दर्शन होनेवाले को... आहाहा! उतने प्रकार का मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी तो आते ही नहीं, वे तो क्षय हो गये। यहाँ तो क्षय की ही बात है, अप्रतिहत (बात है), और उतने प्रकार की अविरति तथा योग का अंश भी क्षय हो गया - ऐसा कहते हैं। वह भूमिका गयी और यह हुई। इस-इस प्रमाण मिथ्यात्व में जो योग और अविरति की दशा थी, वह सम्यग्दर्शन होने पर उतना अन्दर उस सम्बन्धी का अविरतिभाव और उस सम्बन्ध का कषायभाव का क्षय हो जाता है। आहाहा! क्यों? कि अनन्त गुणों का धारक भगवान एकरूप, उसकी अनुभूति होने पर, अनन्त गुणों का अयोग नाम का गुण है, चारित्र नाम का गुण है, श्रद्धा नाम का गुण है, आनन्द नाम का गुण है, उन सब गुणों का एक अंश अनुभूति में आ गया। आहाहा!

इसलिए योग जो अयोग था, उसका अंश भी अनुभूति में आ गया, कहते हैं। आहाहा! क्योंकि सर्वगुणांश, वह समकित-ऐसा है न? जितने गुण हैं तो अयोग नाम का एक गुण है उसमें, आहाहा! उतने सम्बन्धी का... आहाहा! प्रतिजीवी गुण बाकी हैं प्रगट होने में, परन्तु एक अंश तो उसका भी इतना अन्दर अभाव हो जाता है। आहाहा! आहाहा! मिथ्यात्व जाने पर और अनन्तानुबन्धी का नाश होने पर और अनुभूतिदशा होने पर उसका नाश हुआ अर्थात् अनुभूति अस्ति हुई। आहाहा! उसमें जितने गुणों की अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण प्रभु में हैं... प्रभु अर्थात् यह आत्मा, उसके प्रत्येक गुण का एक अंश तो व्यक्त हो जाता है। आहाहा! अयोग नामक गुण का भी एक अंश व्यक्त हो जाता है। आहाहा!

वास्तव में तो जब प्रतिजीवी गुण का अभाव होता है, प्रतिजीव बाहर का, तब उसमें सम्पूर्णरूप से अभाव होता है, परन्तु इस समय भी एक अंश तो उसमें अभाव होता है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि जितने गुणों की संख्या है, जितने, भले प्रतिजीवी गुण अन्दर हों। आहाहा! उतने अनुभूति में वे तो आते नहीं परन्तु अनुभूति होने पर, सम्यग्दर्शन होने पर उनका अंश जो अयोग का अंश अनुभव में आया, उतना योग का अंश नाश हुआ है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! धीर के काम हैं भाई यह तो...

आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा अनन्त गुण का चैतन्यलोक, उसे जब अवलोकन किया, देखा, जाना, माना, अनुभव किया। आहाहा! आहाहा! है वैसा जाना, है वैसा अनुभव किया, है वैसा देखा, है वैसा माना। आहाहा!

ऐसी स्थिति में-अनुभव में ये चार आस्रव हैं ही नहीं, कहते हैं। आहा! अस्थिरता के भले हों, परन्तु अनुभूति में वे नहीं, वह धारा भिन्न रह जाती है परन्तु भिन्न रह जाती है, उसमें भी वह अंशतः तो योग का और अविरति का क्षय हुआ है। ऐसी धारा भिन्न रह जाती है। आहाहा! वे **पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति...** अर्थात् अनुभूति को अपनी लिखना पड़ा कि अनुभव किसका? कि अपना। आहा! **(अपनी) अनुभूति से भिन्न हैं।** आहाहा! गजब काम किया है न? यह शास्त्र कहलाता है। आहाहा! जैसे यह शाश्वत् वस्तु ज्ञान में ज्ञेयरूप से, श्रद्धा में प्रतीतिरूप से आयी। आहाहा! उसे तो अनन्त गुणों की जितनी संख्या है, उन सबका एक अंश व्यक्तरूप से वेदन में आ गया, इसलिए उस अनुभूति में ये चीज़ तो नहीं, परन्तु अनुभूति यथार्थ हुई है, अप्रतिहत धारा, आहाहा! इससे उतने प्रकार की अविरति और योग की भी धारा है, उसमें इतनी धारा नहीं; अस्थिरता की धारा है, उसमें योग का क्षय हुआ है और अब एक योग इतना क्षय हुआ, वह धारा में नहीं। भाई! आहाहा! शशीभाई! यह समयसार! आहाहा! गजब काम किया है न, प्रभु! इसे प्रसिद्ध करने की रीति... आहाहा! इस टीका का नाम आत्मख्याति है। अमृतचन्द्राचार्य, आत्मख्याति है, तो आत्मा प्रसिद्ध में जहाँ आया... आहाहा!

आत्मा जैसा है, वैसा अनुभूति में आया, वह प्रसिद्ध में आया। आहाहा! वहाँ आस्रवों की अप्रसिद्धि हो गयी। आहाहा! एक-एक की। अब धारा में जरा रही है, वह उसमें भी वह वास्तव में तो प्रत्येक गुण का अंश वहाँ प्रगट हुआ है, उतना तो वहाँ (प्रत्यय) क्षय हो गया है, इतनी अस्थिर धारा भले हो परन्तु अनुभूति से भिन्न है। आहाहा! आहाहा! अस्थिरता की धारा है साथ में, परन्तु अनुभूति से भिन्न धारा है परन्तु उस भिन्न धारा का भी, क्षायिक समकित आदि हुआ, उसकी मुख्यता ली है, आस्रव में यह मुख्य लिया है। क्षायिक समकित और उपशम और क्षयोपशम, परन्तु यह मुख्य तो दर्शनशुद्धि हुई। आहाहा!

यहाँ तो अनुभूति तो ऐसी ली है, अप्रतिहत—हुई वह हुई, गिरे ऐसा नहीं। उससे केवलज्ञान लेनेवाले हैं। आहाहा!

श्रोता : ३८ गाथा में आता ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह है, वही यह सर्वत्र लागू पड़ता है। आहाहा! अरे... पंचम काल के श्रोताओं को भी, सन्त ऐसा कहते हैं कि हमने तुमसे कहा और तुम भी परिणम गये उसमें, हों! आहाहा! आहाहा! जो परिणमे, उसे कहे परिणम गये तुम तो, हों! और तुम तो ऐसा कहते हो कि हमें तो यह हुआ वह, अब नहीं गिरेगा - ऐसा तुम तो कहते हो। आहाहा! ऐसी चीज़ सुनना दुर्लभ हो गयी है। है ? आहाहा!

श्रोता : किसी जगह नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! ऐसा अनुभव किया होगा तो देह छूटने के काल में उसका शरण रहेगा। आहाहा! बाकी राग की एकता में देह की अनन्त पीड़ा जहाँ हो अन्दर, वहाँ दब जायेगा, हाय... हाय, असाध्य, मिथ्यात्व से तो असाध्य है। मिथ्यात्व के कारण भान नहीं है, जीव कौन है परन्तु वह तो देह से असाध्य हो जायेगा। आहाहा! दुःख की पराकाष्ठा हो जायेगी, वह सहन नहीं होगी; इसलिए बेभान हो जायेगा। आहाहा! मिथ्यात्व में तो बेभान था। आहाहा! परन्तु यह दुःख पड़ा, वह दुःख सहन नहीं हुआ और दुःख की इतनी पराकाष्ठा हो गयी कि बाहर का असाध्य हो गया। आहाहा! बाहर में जो जानपने का साध्य था, आहाहा! वह असाध्य हो गया। आहाहा! और धर्मी जीव को कदाचित् शरीर और इन्द्रियों में सहज यह असाध्य जैसा हो, परन्तु अन्दर में साध्य चूकता नहीं, उसे। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा!

जो साध्य, जो ध्येय दृष्टि और अनुभव में पकड़ा है। आहाहा! उसका अब असाध्य नहीं होता। आहाहा! शरीर की इन्द्रियाँ आदि में कदाचित् बाहर से शिथिलता हो जाये.. आहाहा! परन्तु अनीन्द्रिय ऐसा भगवान आत्मा, उसकी जो दृष्टि और अनुभव हुआ, वह अब असाध्य नहीं होगा। आहाहा! श्रीमद् ने अन्त में कहा न, देखो न.. आहाहा! मनसुख! माँ को पीड़ा मत होने देना। ३३ वर्ष की उम्र, माताजी जीवित है, पिताजी जीवित है, लड़के... आहाहा! भाई! माँ को पीड़ा मत होने देना, मैं अब स्वरूप में साधने को जाता हूँ।

आहाहा! अक्षरशः सत्य, हों! मैं अब बाहर का लक्ष्य छोड़ देता हूँ। आहाहा! मेरा प्रभु अन्दर है, वहाँ मैं जाता हूँ अब, उपयोग से, हों! वस्तु तो थी परन्तु उपयोग ऐसे बाहर था, वह उपयोग अब वहाँ ले जाता हूँ। आहाहा! यह देह छूटने के अवसर पर उसे समाधि रहे, शान्ति रहे। आहाहा! दूसरे देह छूटने के समय में दब जायेंगे। आहाहा! ऐसी बात है। यह एक बोल की इतनी व्याख्या हुई। आधा घण्टा हुआ, आधा। हैं?

श्रोता : आधा अधूरा रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! इतना तो आया। आवे तब आवे न? आहाहा!

श्रोता : मिथ्यात्व, ज्ञान की पर्याय में नहीं न? मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग?

पूज्य गुरुदेवश्री : चारों ही नहीं। अनुभूति में मिथ्यात्व तो नहीं परन्तु अविरति और कषाय भी नहीं। ये बात तो की न। बात की न, चारों ही नहीं; मिथ्यात्व तो नहीं, परन्तु जो अस्थिरता है इस कषाय की, वह अनुभूति में नहीं, आहाहा! कदाचित् कोई समकितमोह का उदय हो वहाँ, इसलिए क्षायिक का लिया था न! उसका भी वहाँ अनुभूति में, अनुभूति से वह भिन्न है और उस समकित मोहनीय का बन्ध नहीं है, आहा! आकर खिर जाता है। आहाहा! ऐसा शरण है वह, प्रभु! आहाहा! अन्यत्र कहीं शरण नहीं है। आहाहा!

अब वे आठों ही कर्म अनुभूति में नहीं हैं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! (तेरहवाँ बोल) **ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायरूप कर्म है,...** ये कर्म हैं। **वह सर्व ही जीव को नहीं है...** आहाहा! आहाहा! जीवद्रव्य में नहीं, परन्तु उसकी अनुभूति में नहीं, ऐसा कहते हैं। तभी उसे द्रव्य में नहीं, ऐसा भान होता है। द्रव्य में नहीं, द्रव्य में नहीं, परन्तु जब द्रव्य दृष्टि में आया है, अनुभव में आया, तब द्रव्य में नहीं, उस अनुभूति में नहीं। आहाहा!

ऐसी अमृतधारा रह गयी, जगत का भाग्य! आहाहा! साक्षात् तीन लोक के नाथ की वाणी है, यह सन्तों ने कही है परन्तु वाणी वह दिव्यध्वनि है। आहाहा!

श्रोता : सन्त, भगवान हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : ओहोहो! वे भगवान हैं, परमेश्वर हैं, मोक्षतत्त्व हैं, वे मोक्षतत्त्व

में हैं। आहाहा! भले मोक्षमार्ग में हैं परन्तु वे मोक्षतत्त्व में हैं, ऐसा कहा न प्रवचनसार? आहाहा!

कहते हैं कि आठों ही कर्म, आठों ही कर्म, कर्म में भले हों। है -ऐसा कहा, परन्तु चैतन्य भगवान जीव के नहीं हैं। आठों कर्म, कर्म में हैं परन्तु जीव में नहीं। जीव में नहीं, कब? कि अनुभूति करे, तब वे जीव में नहीं हैं - ऐसा ख्याल आता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं, बापू! आहाहा! जवान-जवान योद्धा कुछ पता ही नहीं, चले जाते हैं, उसे तो रोग था कि नहीं, यह भी सुना नहीं था। आता था प्रतिदिन, लड़कों को लेकर, ऐसा तैरता है ऐसा। आहाहा! ऐसा वहाँ समाप्त, देह की स्थिति पूरी हो गयी, बापू! मुद्दत की चीज़ है, वह जड़ की, वह अवधि से चली जायेगी। आहाहा! ऐसी चीज़ है वह। यह तो (आत्मा तो) त्रिकाली चीज़ है, इसे अवधि ही कहाँ? आहाहा!

परन्तु यह त्रिकाली शाश्वत् चीज़ है, इसे अवधि नहीं-ऐसा कब भान होता है? कि अनुभूति करे तब। आहाहा! आहाहा! यह यहाँ कहते हैं। कर्म है, वह सब ही जीव को नहीं है। तब यह कर्म जड़ को होगा? कि हाँ; यह जड़ है, जड़ में है, आत्मा में नहीं। कब? क्योंकि वह **पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** आहाहा! वे परिणाम लिये इसके, इससे यहाँ अनुभूति के परिणाम में वे नहीं। आहाहा! क्या कहा यह? कर्म की पर्याय जो है, वह परिणाम है। यद्यपि कर्म की पर्याय होना ऐसा कोई परमाणु के स्कन्ध में गुण नहीं है। समझ में आया? कल कहा था। आहाहा! यह कर्म की पर्याय स्कन्ध में, पर्याय में जो उत्पन्न हुई। आहाहा! वह परिणाम, यह द्रव्य-गुण और पर्याय तीन हो गये। परमाणु द्रव्य, उसके गुण, उसकी शक्ति / शक्ति / गुण और पर्याय हुई, वह उसकी पर्याय। वह द्रव्य, गुण और पर्याय। अब यहाँ भगवान आत्मा में द्रव्य में नहीं, उसके गुण में नहीं, यह इसकी अनुभूति की पर्याय में तीन नहीं, आहाहा! उस तीन में है, इस तीन में नहीं। आहाहा! यह समयसार। आहाहा!

द्रव्य अर्थात् भगवान आत्मा और गुण अर्थात् अनन्त शक्तियाँ और पर्याय अर्थात् उसकी पर्याय अर्थात् अनुभूति, वह उसकी पर्याय और वे पुद्गल के परिणाम, वह पुद्गल की पर्याय। पुद्गल द्रव्य, उसके गुण, वर्ण, गन्ध आदि और यह पर्याय / अवस्था वह कर्म

की उसकी पर्याय। इस प्रकार वहाँ है-इस प्रकार वहाँ है। यहाँ द्रव्य-गुण और पर्याय में वे नहीं परन्तु पर्याय में अनुभव हुआ, तब द्रव्य-गुण में नहीं और वे उसमें हैं, ऐसा भान हुआ। आहाहा! समझ में आया? ऐसा है। आहाहा!

जिनेश्वरदेव तीन लोक के नाथ की यह पद्धति है। यह सन्त उस पद्धति को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! वे अनुभूतिवाले स्वयं को प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! आहाहा! मैं त्रिकाली आनन्द का नाथ प्रभु शुद्ध चैतन्यघन में अनन्त गुण, उस द्रव्य का आश्रय करने से जो अनुभूति होती है, वह उसकी पर्याय है। राग और विकार, वह उसकी पर्याय नहीं। आहाहा! वह तो पुद्गल के परिणाम हैं। दो विभाजित कर दिये हैं। कहते हैं कि वह कर्म की पर्याय, पुद्गल के परिणाम और अनुभूति, वह मेरे जीव की पर्याय। आहाहा! समझ में आया? यह मेरी अनुभूति से भिन्न है अर्थात् आ गया। द्रव्य की अनुभूति हुई है तो द्रव्य-गुण में नहीं तो मेरी पर्याय में वह कर्म है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी सूक्ष्म बातें हैं।

(अपनी) अनुभूति से भिन्न है। उसका अनुभव नहीं, यहाँ ऐसा कहते हैं। वह भले हो, परन्तु उसका अनुभव नहीं। है, वह है और यहाँ है। यह है, यहाँ है... आहाहा! परन्तु प्रभु जो है द्रव्य-गुण से भरपूर प्रभु, उसकी अनुभूति हुई, इसलिए मेरी पर्याय में नहीं, तो फिर द्रव्य-गुण की तो बात ही क्या करना? आहाहा! ऐसा स्वरूप है। और वह नहीं, वह अब नहींरूप ही रहनेवाला है - ऐसा कहते हैं। मेरे द्रव्य-गुण में तो नहीं, परन्तु पर्याय में नहीं, वह अब नहींरूप ही रहनेवाला है। मैं नहींरूप ही हो जानेवाला हूँ। आहाहा! आहाहा! उसमें आता है न, यह किसी को पूछने नहीं जाना पड़ेगा। निर्जरा अधिकार में आता है। आहाहा!

श्रोता : अपना सुख प्राप्त हुआ वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वरूप प्राप्त हो, वह अनुभूति हो, उसे किसी से पूछने नहीं जाना पड़ता कि मुझे यह हुआ है या नहीं? और दुनिया जाने तो है और दुनिया न जाने तो नहीं-ऐसा है? आहाहा! यह तेरह बोल हुए।

चौदहवाँ बोल—**जो छह पर्याप्तियोग्य और तीन शरीरयोग्य वस्तु (पुद्गलस्कन्ध)**

रूप नोकर्म... क्या कहा यह ? आहार योग्य परमाणु, शरीर, इन्द्रिय, भाषा, श्वास, मन— ऐसी छह पर्याप्ति के योग्य ये पुद्गलस्कन्ध। छह पर्याप्ति के योग्य जो पुद्गलस्कन्ध और तीन शरीर के योग्य पुद्गल कर्म। औदारिक, वैक्रियक और तैजस। आहारकशरीर वह तो एक ओर रह गया। यहाँ तो तीन शरीर—औदारिक, तैजस और कार्माण, बस। उसको (देव-नारकी को) वैक्रियक, तैजस और कार्माण। आहारक तो किसी समय होता है, उसका प्रश्न नहीं। आहाहा! **तीन शरीरयोग्य वस्तु (पुद्गलस्कन्ध) रूप नोकर्म है,...** नोकर्म हैं, अस्ति तो सिद्ध की। ये है ही नहीं, उस वेदान्त की तरह, आत्मा सत्य और दूसरा भ्रम-मिथ्या / जगत् मिथ्या-ऐसा नहीं है। जगत्, जगत्रूप से है। यहाँ तो आत्मा की अपेक्षा से नहीं, परन्तु वह है ही नहीं, ऐसा कहते हैं वे लोग; इसलिए यह पहले सिद्ध करते हैं कि वह है। आहाहा! आहाहा! छह पर्याप्ति के योग्य आहार, शरीर, आहाहा! यह जीव बाँधता है - ऐसा कहना वह व्यवहार है। बाँधे कौन ? जीव, पर्याप्ति को बाँधे ? आहाहा!

इस शरीर के और इस कर्मपुद्गल के योग्य जो छह पर्याप्ति हैं, वे पुद्गलस्कन्धरूप नोकर्म हैं। वह सब जीव के नहीं हैं। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा, मन, ये पर्याप्ति के योग्य पुद्गल हैं, वे मुझमें नहीं हैं, उसमें है। आहाहा! जीव पर्याप्तिवाला है और स्वाच्छोश्वास वाला है, आहारक शरीर - आहार करनेवाला है, इन्द्रियवाला है... मैं नहीं, कहते हैं। आहाहा! छह पर्याप्ति के योग्य पुद्गल स्कन्ध, नोकर्म और तीन शरीर के योग्य नोकर्म, **वह सर्व ही जीव को नहीं है,...** वह जीवद्रव्य में नहीं है। वह उसमें है, इसमें (जीव में) नहीं है। परन्तु कब ? मुझमें नहीं और उसमें है - ऐसा कब ? कि अनुभूति हो तब। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का अनुभव होने पर, मेरी चीज़ में ज्ञान और आनन्द है, मेरी चीज़ में वे कोई आहार परमाणु है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ओहोहो!

वे **पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से...** वह तो पुद्गलद्रव्य की पर्याय है, पर्याप्ति योग्य जो पुद्गल है, वह तो पुद्गलद्रव्य की पर्याय है। पुद्गलद्रव्य है, उसके गुण हैं और यह उसकी पर्याय है, कहते हैं। आहाहा! ऐसे तो श्वास चलता है न श्वास ? वह पुद्गलद्रव्य की पर्याय है परन्तु वह श्वास ऐसे... ऐसे है, उसमें आत्मा के प्रदेश भी शामिल

हैं, अकेला पवन नहीं चलता, उसमें प्रदेश भी शामिल हैं। जैसे इस अवयव में हैं, वह-श्वास भी एक अवयव है परन्तु यह मेरा जो आत्मा है, उसका जो अनुभूति में उस श्वास के परमाणु और इस पर्याप्ति के परमाणु मुझमें नहीं है। आहाहा! श्वास चलता है, उसमें आत्मा के प्रदेश हैं, परन्तु फिर भी कहते हैं कि अनुभूति से देखें तो वे श्वास के परमाणु मेरी पर्याय में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बातें हैं।

ऐसा कहते हैं न, वे—गहरा श्वास लो, अमुक लो, उसमें आत्मा के प्रदेश हैं परन्तु कहते हैं कि मेरा आत्मा... आहाहा! इसकी अनुभूति में आया, इसलिए वे सब पर्याप्तियोग्य पुद्गल, श्वास जो ऐसे-ऐसे चलती है, वह मुझमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया? इस श्वास को हिलाता हूँ, ऊँचा-नीचा करता हूँ, वह मैं नहीं। आहाहा! डॉक्टर कहे न, देखना हो तो, गहरा श्वास लो, धीरे से लो। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! इस जीव में इस पर्याप्ति के योग्य और तीन शरीर के योग्य पुद्गल नहीं... नहीं... नहीं... कहते हैं। जीव में नहीं-ऐसा कब हो? कि जीवद्रव्य का अनुभव हो कि यह तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप प्रभु है। आहाहा! तब उसकी अनुभूति में नहीं है, इसलिए जीव में नहीं है। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। अरे! ऐसी चीज़ मूल वस्तु रह गयी और लोग सब बाहर चढ़ गये, आहाहा! रास्ता छोड़कर।

श्रोता : समझानेवाले भी चले गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी हो गयी, हो गयी, ऐसी हुई, बात सच्ची है। आहाहा! **(अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** आहाहा! १४ वाँ (बोल पूरा हुआ)।

(१५ वाँ बोल) अब, **कर्म के रस की शक्तियों का (अर्थात् अविभागप्रतिच्छेदों का)...** परमाणु में, कर्म का रस-अनुभाग, वह समूहरूप वर्ग है, वर्ग, उसके परमाणुओं का समूह है, रस के परमाणुओं का **समूहरूप वर्ग है, वह सर्व ही जीव का नहीं है,...** वह है कहा, समूहरूप वर्ग है अवश्य। अस्ति है परन्तु वह मेरे जीव में नहीं है। जीव में नहीं है, यह कब हुआ? कि जीव का ज्ञान और अनुभव हुआ, तब वह जीव में नहीं है - ऐसा इसे निर्णय हुआ। आहाहा! धार रखा था कि आत्मा में कि आत्मा में यह नहीं है, परन्तु इसको-जीव में नहीं है - ऐसा अनुभव नहीं हुआ, आहाहा! कि यह पुद्गल परमाणु, जीव

में नहीं है, इस कर्म का रस है यह, अविभागी प्रतिच्छेद, यह धार रखा था, वह कर्म की बातें। आहाहा! वहाँ तक वह भिन्न है - ऐसा भान नहीं था, आहाहा! वह जीव भगवान आत्मा अपनी अनुभूति, उससे वह भिन्न है—ऐसा भान हुआ, तब जीव में नहीं है - ऐसा कहा गया। जीव का अनुभव होने पर वह तो आनन्द और ज्ञान और शान्ति का सागर है —ऐसी अनुभूति होने पर सम्यग्दर्शन और अनुभव होने पर, यह वस्तु तो अनन्त ज्ञानदर्शन और आनन्द का कन्द प्रभु है, तो उसमें नहीं अर्थात् वर्तमान मेरी अनुभूति में भी वह नहीं। आहाहा!

कर्म का अनुभाग भोगना पड़ेगा - ऐसा लोग कहते हैं न!

श्रोता : फल को भोगना पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अनुभाग / फल कौन भोगे? सुन, भाई! आहाहा! यह कर्म का अनुभाग, वह तो पुद्गल का परिणाम है, वह पुद्गल के साथ अभेद है, जीव में वह नहीं है। अर्थात्? जीव जो जानने में आया, अनुभव में आया कि जीव तो शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द है, ऐसा जो अनुभव में आया, इससे उसे अनुभूति से भिन्न है, उस जीव में नहीं - ऐसा नक्की / निर्णय हुआ। आहाहा! समझ में आया? हमारे नारायणभाई थे, वे २९ बोल का घूरा कहते, वह तो घूरा है २९ बोल का, उससे भिन्न है। आहाहा!

यह सब रस है न? कर्म के रस की शक्तियों के अविभागप्रतिच्छेद, मूलशक्ति अर्थात् वह **समूहरूप वर्ग है, वह सर्व ही जीव का नहीं है,...** यह वर्ग नहीं कहते, एकडिया का वर्ग, दो का वर्ग, तीन का वर्ग; इसी प्रकार इन परमाणुओं के अनुभाग का एक वर्ग है। आहाहा! वह **(अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** आहाहा! मेरा वर्ग है, वह तो अनन्त गुण से भरपूर मेरा वर्ग है। उसकी अनुभूति होने पर, जीव में नहीं अर्थात् उसका भान हुआ। आहाहा! समझ में आया? १५ बोल हुए।

(१६ वाँ बोल) **जो वर्गों का समूह...** बहुत वर्ग, पहला वर्ग, दूसरा वर्ग करके सात पुस्तक का सब शामिल वर्ग करते हैं न, सात का; इसी प्रकार इन परमाणुओं के अनुभाग का रस, उसका पूरा समूह सबका-सबका वह **वर्गणा है, वह सर्व ही जीव का नहीं है, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** आहाहा!

१७ वाँ (बोल) विशेष **मन्दतीव्ररसवाले कर्मसमूह...** मन्द और तीव्र रस है, वह कर्म के समूह का **विशिष्ट न्यास (जमाव) रूप (वर्गणा के समूहरूप) स्पर्धक हैं...** वर्ग में छोटा भाग आया, वर्गणा में बहुत भाग आया और स्पर्धक में सब आया। वे सब जीव के नहीं हैं। वे सब विशेष जानने की कर्म की बात है। **पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न हैं।** आहाहा!

१८- **स्व-पर के एकत्व का अध्यास...** आहाहा! स्व-पर के एकपने का अध्यवसाय -एकपने का अध्यास अर्थात् अभ्यास हो, **तब (वर्तने पर), विशुद्ध चैतन्यपरिणाम से भिन्नरूप...** विशुद्ध चैतन्यपरिणाम से भिन्नरूप, आहाहा! मेरा प्रभु विशुद्ध चैतन्यपरिणाम में आया। आहाहा! **चैतन्यपरिणाम से भिन्नरूप जिनका लक्षण है, ऐसे जो अध्यात्मस्थान हैं...** अर्थात् अध्यवसाय के स्थान, हों! अध्यात्म अर्थात् आत्मा नहीं। अध्यवसाय के वे सब जीव को नहीं हैं। आहाहा! **विशुद्ध चैतन्यपरिणाम से भिन्नरूप जिनका लक्षण है,** आहाहा! **ऐसे जो अध्यात्मस्थान...** स्व-पर के एकपने का अभ्यास हो तब, वर्तते हों तब, उन **विशुद्ध चैतन्यपरिणाम से भिन्नरूप जिनका लक्षण है,...** आहाहा! **ऐसे जो अध्यात्मस्थान हैं, वे सर्व ही जीव के नहीं हैं, क्योंकि वह पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** कर्म की अपेक्षा है, इसलिए जरा सूक्ष्म है थोड़ा, आहाहा! उसमें समुच्चय लिया था रस में।

अब, १९। यहाँ **भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के रस के परिणाम जिनका लक्षण है ऐसे जो अनुभागस्थान...** प्रत्येक प्रकृति में अनुभाग होता है न? प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश- चार, ऐसे ये **अनुभागस्थान, वे सर्व ही जीव के नहीं हैं,...** कर्म का अनुभाग, वह तो पुद्गल के परिणाम हैं, वे जीव की अनुभूति के परिणाम से तो भिन्न हैं। आहाहा! अनुभव में कर्म का रस है, वह अनुभव में नहीं आता -ऐसा कहते हैं, आत्मा का आनन्द है, वह अनुभव में आता है, वह रस अनुभव में आता है। आहाहा! कर्म के अनुभागस्थान इसमें नहीं है। **पुद्गलद्रव्य के परिणाममय होने से (अपनी) अनुभूति से भिन्न है।** १९ हुए।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)